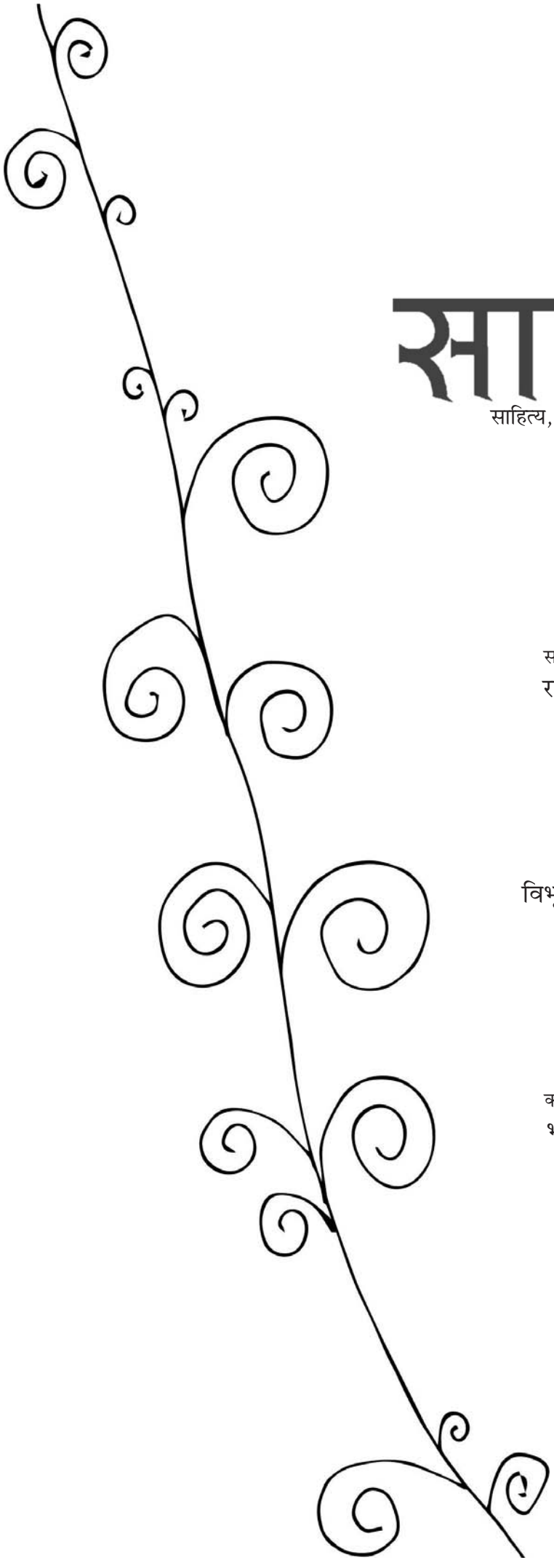

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

वर्ष 32 ❑ अंक 11 ❑ नवम्बर, 2015

सलाहकार संपादक
रवीन्द्र कालिया

संपादक
विभूति नारायण राय

कार्यकारी संपादक
भारत भारद्वाज

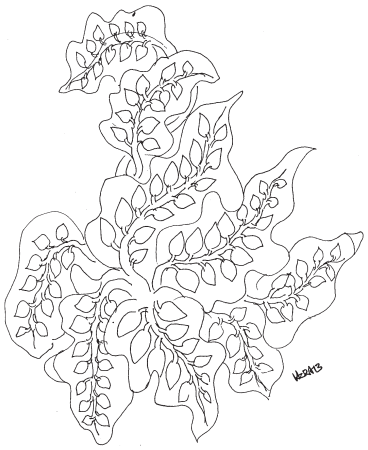

वर्ष 32 ❑ अंक 11 ❑ नवम्बर, 2015
RNI पंजीकरण संख्या 40342/83
डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63, 2013-2015

संपादकीय कार्यालय :
टी/101, आम्रपाली सिलिकॉन सिटी, सेक्टर-76,
नोएडा-201306 मो. 09643890121

E-mail : vartmansahitya.patrika@gmail.com
Website : vartmansahitya.com

कला-पक्ष : भरत तिवारी

सहयोग राशि : एक प्रति मूल्य : 30/-; ☐ वार्षिक : 350/-;
☐ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 500/- ☐ आजीवन : 11000/-
☐ **विदेशों में वार्षिक** : 70 डॉलर।

बैंक के माध्यम से सदस्यता शुल्क भेजने के लिए
वर्तमान साहित्य
चालू खाता संख्या : 85141010001260
IFSC : SYNB0008514,
सिंडीकेट बैंक, रामघाट रोड, अलीगढ़-202002

कृपया राशि भेजने की सूचना तत्काल ईमेल, एसएमएस अथवा पत्र द्वारा भेजें।

सदस्यता से सम्बन्धित सारे भुगतान मनीऑर्डर/ड्राफ़्ट/चैक/बैंक के माध्यम से **वर्तमान साहित्य** के नाम से संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँ। मनीऑर्डर भेजने के साथ ही पत्र द्वारा अपना पूरा पता फोन नं. सहित सूचित करें।

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक विभूति नारायण राय की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एम.आई.जी., अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से **वर्तमान साहित्य**, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

अंदर की बात

संपादकीय

कबिरा हम सबकी कहैं / *विभूति नारायण राय* 3

आलेख

ग़दर आंदोलन में एक राजा : राजा महेंद्र प्रताप
/ *प्रदीप सक्सेना* 5

स्मृति शेष

मेरे गुरुदेव डॉ. गोपाल राय / भारत भारद्वाज 14
नींद रहे नींद फकत नींद नहीं / प्रियदर्शन मालवीय 16

धारावाहिक उपन्यास-6

कल्चर वल्चर / *ममता कालिया* 17

अनुवाद (पंजाबी कहानी)

लावा / *मूल : हरप्रीत सेखा, अनु : सुभाष नीरव* 24

चर्चित कहानी बनाम प्रिय कहानी

बिल्लियां बतियाती हैं / *एस आर हरनोट* 30
आत्मवक्तव्य 39
चर्चा / *मनीषा कुलश्रेष्ठ* 40

कहानी

बोर्डिंग पास / *अनुज* 50
बँटवारा / सुशांत सुप्रिय 54

संस्मरण

सतीश जमाली : जर्जर डोंगी और बूढ़ा मछेरा/ मधुरेश 56

कविताएं

मान बहादुर सिंह 41
संजय मिश्र 48
अमरेन्द्र कुमार शर्मा 62
सरोज परमार 64
स्वप्निल श्रीवास्तव 65
निर्मल गुप्त 66

समीक्षा

हिन्दी समाज की मौत का मर्सिया / *प्रेमपाल शर्मा* 67

मीडिया

बच्चों के लिए स्वस्थ संचार अत्यावश्यक / *प्रांजल धर* 69

स्तम्भ

रचना संसार / *सूरज प्रकाश* 73
तेरी मेरी सबकी बात / *नमिता सिंह* 77

सम्मति : इधर-उधर से प्राप्त प्रतिक्रियाएं 80

संपादकीय

कबिरा हम सबकी कहैं

सत्तर के दशक का फ्रांस। लोकप्रियता और राष्ट्रभक्ति की लहरों पर चढ़कर शीर्ष तक पहुँचा द गाल असंतुष्ट जनता के उभार से परेशान था। अलजीरिया फ्रांसीसी गुलामी की ज़ंजीरें तोड़ने को व्याकुल था और पेरिस की सड़कों पर छात्र, मजदूर और लेखक उसकी आज़ादी के समर्थन में उतर गये थे। ज्यां पाल सार्त्र जैसे बुद्धिजीवी इस जन उभार का नेतृत्व कर रहे थे। किसी चाटुकार ने राष्ट्रपति द गाल को सलाह दी कि सार्त्र को गिरफ्तार कर लिया जाना चाहिए और तब द गाल ने वह ऐतिहासिक उत्तर दिया था कि हम फ्रांस को गिरफ्तार नहीं कर सकते। उसके लिए सार्त्र फ्रांस था।

जरा आज के भारत से इसकी तुलना कीजिये। विवेक और तर्क के पक्ष में आवाज उठाते हुए दाभोलकर, पनसारे और कलबुर्गी की हत्या होती है। इनमें कलबुर्गी साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित लेखक थे। वैसे तो साहित्य अकादमी को किसी भी तरह की असहिष्णुता और हिंसा के विरोध में खड़ा दिखना चाहिए पर कलबुर्गी तो उसके द्वारा सम्मानित भी थे अत: उनकी हत्या पर यह स्वाभाविक अपेक्षा की ही जा सकती थी कि अकादमी कम से कम एक शोक सभा करेगी और इस जघन्य घटना की निंदा करेगी। ऐसा कुछ नहीं हुआ। अकादमी के दक्षिणपंथी नेतृत्व ने खुद तो पहल की ही नहीं, याद दिलाये जाने पर भी अपने चाटुकारों से इस तरह के बयान जारी कराए जिनसे ध्वनि निकलती थी कि कलबुर्गी के साथ जो हुआ वे उसी के पात्र थे या जिन लेखकों ने अपने सम्मान लौटाए हैं वे सभी बाहरी शक्तियों से संचालित हो रहे हैं।

सिर्फ एक अहंकारी संस्था ही ऐसा सवाल कर सकती थी कि उसके द्वारा पुरस्कृत लेखक सम्मान तो लौटा सकते हैं पर पुरस्कार मात्र से जो ख्याति उन्होंने अर्जित की है उसे कै से वापस करेंगे? बड़ी से बड़ी संस्था भी सम्मान की घोषणा इस विनम्रता के साथ करती है कि किसी लेखक को सम्मानित करते समय वह स्वयं सम्मानित महसूस कर रही है। साहित्य अकादमी इतनी छोटी कब से हो गयी कि उसके खैरख्वाहों ने पुरस्कार लौटाने वालों से इससे जुड़े यश और अर्थ का हिसाब माँगना शुरू कर दिया? इसका उत्तर तलाशना बहुत मुश्किल नहीं है। अगर गोपीचंद नारंग और विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जैसे छोटे कद के लोग साहित्य अकादमी के अध्यक्ष चुने जायेंगे तो उसकी विश्वसनीयता कम होगी ही। अकादमी के निर्वाचक मंडल के चयन की प्रक्रिया ही ऐसी है कि अगर कोई चतुर तिकड़मबाज़ दो-तीन साल धैर्य से कोशिश करे तो वे अपना अध्यक्ष चुनने में सफल हो सकते हैं। नारंग और तिवारी की जोड़ी ने यही किया था और इसमें वे कामयाब भी हुए। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के समय में पहली बार ऐसा लग रहा है कि साहित्य अकादमी भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय का ही एक विस्तार है।

जवाहरलाल नेहरू और मौलाना आज़ाद द्वारा स्थापित तथा लम्बे समय तक सप्रयास अपनी स्वायत्तता बचाए रखने वाली संस्था का सर्वथा अयोग्य और अवसरवादी नेतृत्व खुद ही सरकार के सामने समर्पण कर रहा है।

दुर्भाग्य से यह सब तब हो रहा है जब देश जवाहरलाल नेहरू की 125वीं वर्ष गाँठ मनाने की तैयारी कर रहा है।

चैनलों पर, अख़बारों में या बातचीत के दौरान अकसर यह सवाल पूछा जा रहा है कि सम्मान लौटाने से क्या होगा? क्या लेखकों को अपनी ही संस्था का विरोध करना चाहिए? या सरकार पर इसका कुछ असर पड़ेगा भी? कुछ संदिग्ध किस्म के लेखकों का हवाला देकर यह दलील दी जा रही है कि पहले तो जोड़-तोड़ कर उन्होंने सम्मान हासिल किये और अब इन्हें लौटा कर वे प्रचार का एक नया तरीका अपना रहे हैं। मेरा मानना है कि आज के माहौल में ये सारे प्रश्न बेमानी हैं। जब घर में आग लगी हो तो यह सवाल नहीं पूछा जाना चाहिए कि उसे बुझाने के लिए कौन दौड़ा। हर व्यक्ति को अपने सामर्थ्य भर इस प्रक्रिया में भाग लेना ही चाहिए। देश में जिस तरह से असहिष्णुता का माहौल पैदा किया जा रहा है और असहमति के लिए जगह छोटी पड़ती जा रही है उसमें हर प्रतिरोध का महत्व है। सम्मान लौटा कर रचनाकारों ने और कुछ किया हो या नहीं यह तो साबित कर ही दिया है कि असहिष्णुता को वाक ओवर नहीं मिलने जा रहा है।

बिहार के चुनाव में एक मजेदार दृश्य दिखाई दिया। मध्य वर्ग और अपने समर्थकों के बीच माडरेट छवि बनाने की कोशिश कर रहे नितीश कुमार एक तांत्रिक के साथ धरा गये। लालू तो सार्वजनिक रूप से तन्त्र-मन्त्र, पूजा-पाठ करते ही रहे हैं, नितीश पहली बार इस चक्कर में पकड़े गये। पर यह तो देखिये उन्हें इस पर टोक कौन रहा है— नरेंद्र मोदी जिन्होंने मुम्बई में डाक्टरों के एक सम्मेलन में भागीदारों का ज्ञानवर्धन किया था कि गणेश जी के शरीर पर हाथी का सर किसी प्लास्टिक सर्जन ने फिट किया था या जिनके रक्षा मंत्री अपने वैज्ञानिकों से दधीचि की हड्डियों का रहस्य तलाश कर वज्र सरीखे अस्त्र बनाने की सलाह देते हैं।

यह एक छोटी सी घटना इस तथ्य की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करती है कि राजनीति का हमारा शीर्ष नेतृत्व वैज्ञानिक चेतना से किस कदर महरूम है। यही कारण है कि डाक्टर अम्बेडकर की क़समें खाने वाले ये लोग आज भी उनकी सीख मान कर जातियों का समूलोच्छेदन न करके उसे मजबूत करने का ही काम कर रहे हैं।

वर्तमान साहित्य के पिछले अंक में हमने भाई परमानंद और जवाहरलाल नेहरू के बीच 1935 में **सरस्वती** में छपी एक बहस दी थी और उस पर पाठकों की व्यापक प्रतिक्रियायें प्राप्त हो रही हैं। उन्हें हम अगले किसी अंक में छापेंगे।

इस बीच हिंदी के सुपरिचित कवि वीरेन डंगवाल, साहित्येतिहास के गम्भीर अध्येता गोपाल राय और जन पक्षधर थियेटर एक्टिविस्ट/अभिनेता युगल किशोर हमारा साथ छोड़ कर चले गये। इन सभी का वर्तमान साहित्य परिवार की ओर से आत्मीय स्मरण।

विभूति नारायण राय

(विभूति नारायण राय)

ग़दर आंदोलन में एक राजा : राजा महेंद्र प्रताप

□ प्रदीप सक्सेना

प्रसिद्ध ब्रिटिश पुलिस अधिकारी के दस्तावेज़ी अध्ययन 'पालिटिकल ट्रबुल इन इंडिया' का दसवाँ अध्याय है—''जर्मनी और तुर्की।''[1] बाद के अनेकों ग्रंथों की आधार सामग्री का स्रोत! कभी-कभी तो बाद की लिखी हुई चीज़ें 'जेम्स कैंपबेल कर' के उपर्युक्त ग्रंथ की ही व्याख्या, विश्लेषण या विस्तार ही प्रतीत होती हैं या हैं।

उदाहरण के लिए, पहला उपशीर्षक है यहाँ—'इंडियन रेवोल्यूशनरीज़ एण्ड ए यूरोपिअन वार'[2] जिसमें वे कहते हैं—

"For many years Indian revolutionaries have held the view, copied perhaps from their Irish supporters in New York, that England's difficulty would be Indians opportunity, and as for back 1910 Madame Coma is faend discribing Berlin as "the capital of the country which is at present most hostle is spirit of England."[3]

इसी तरह बरकतुल्ला के बारे में कहा है—

"In 1912 Barakatullah discussing in his poper what he called "the Christian combination against slom" made the following interesting of somewhat ungrammatical remarks—

—"There is really one man who holds the peace of the world as well as the war in the hollow of his hand, and that man is Emperor Williom of Germany. Russia, England, France and Italy moved heavens and earth to creat rebellion and disturbances within the Ottoman dominions to egg the Balkan states on to a war against Turky, to encourage the cretans to join the Greeks and to force the passage into Dardanellis, and finally are trying to call a comference of European powers—all this to compell Tarkey to give up Tripoli. But the Emperor William set all their tricks at naught and mainlained the peace of the world and integrity of the Ottoman Empire. In case there be a conference of the Eropean Powers, or a European war, it is the duty of the Muslims to be united, to stand by the Khalif, with their life and property, and to side with Germany. *Germany's word alone in reliable;* while the others blow the frumpet of independence, intigrity, Civilization and progress, but they at the same time go marching along through bloodshed, desecration of holy places, rapine and plunder."[4]

मैडम कामा और बरकतुल्ला दोनों का विचार यहाँ यही है कि ''जर्मनी जैसा कोई नहीं।'' या ''सबसे योग्य विश्वप्रशासक कोई है तो क़ैसर!'' जर्मनी ही भरोसेमंद है। उसी के बल से भारत अपनी स्वाधीनता फिर प्राप्त कर सकता है। अंग्रेज़ों को भारत खदेड़कर भगाना अगर चाहता है तो जर्मनी की सहायता के बिना यह संभव नहीं होगा। यानी प्रथम विश्वयुद्ध का नायक है वह और इंगलैंड को हरा सकने की सामर्थ्य है उसमें।

जिस प्रकार दसवें अध्याय का शीर्षक कैंपबेल ने रखा है—''जर्मनी और तुर्की'' उसी प्रकार 'विश्वमित्र उपाध्याय' ने अपने द्वि-खण्डी ग्रंथ ''विदेशों में भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन''[5] खण्ड-II के पहले अध्याय का शीर्षक रखा है—''भारतीय क्रांतिकारी और जर्मनी।'' दोनों ग्रंथों के उपर्युक्त अध्यायों में वर्णन-विश्लेषण भारतीय क्रांतिकारियों का ही है। ऊपर हम कैंपबेल का विवरण रख चुके हैं। यहाँ हम श्री उपाध्याय के भी दो विवरण रख रहे हैं। सबसे पहले जर्मनी में भारतीय क्रांतिकारियों की गतिविधियों से संबंधित—

''भारतीय क्रांतिकारी अपने देश की स्वतंत्रता के लिए किये जाने वाले सशस्त्र विद्रोह में विदेशी शक्तियों का सहयोग

लेने को उत्सुक थे। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में बनाये गये कड़े व निरंकुश कानून, अत्यधिक सतर्कता तथा क्रांतिकारियों के विरुद्ध की जा रही कार्रवाइयों के कारण भारत में काफी मात्रा में शस्त्र एकत्र करना कठिन था। ऐसी स्थिति में क्रांतिकारियों ने विदेशी शक्तियों से मदद लेने की कोशिश की। बीसवीं शताब्दी के प्रथम व दूसरे दशक में **यूरोप की राजनीति में जर्मनी का काफी प्रभाव था।**''[6]

''ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में विश्वबाज़ार के पुनर्विभाजन तथा अपने-अपने उपनिवेशों के विस्तार के लिए कड़ी प्रतिस्पर्द्धा चल रही थी। इस प्रतिस्पर्द्धा में जर्मनी ब्रिटेन के विरुद्ध था।''[7]

''ऐसी स्थिति में **आयर्लैंड के क्रांतिकारियों की तरह** भारत के क्रांतिकारियों ने यह आशा की थी कि ब्रिटेन के विरुद्ध उनके क्रांति प्रयासों में जर्मनी उनकी मदद करेगा।''[8]

''श्रीमती कामा, चेम्पकरामन पिल्लई और वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय से लेकर सुभाषचन्द्र बोस तक, भारतीय राष्ट्रप्रेमियों ने आधी सदी तक इसी समझ के आधार पर जर्मनी से मदद प्राप्त करने की कोशिशें कीं।''[9]

भले ही जर्मनी ने अत्यधिक सीमित सहयोग दिया हो। उसने अधिक दिलचस्पी नहीं दिखाई। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान उसकी दिलचस्पी इसमें ज़रूर थी कि **ब्रिटिश साम्राज्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण देश भारत में गड़बड़ी हो।** और **ब्रिटेन का भारतीय मोर्चा कमज़ोर पड़ जाए परंतु अपने साम्राज्यवादी स्वरूप के कारण जर्मनी की भारत की स्वतंत्रता में कोई खास रुचि नहीं थी।**

श्री उपाध्याय यहाँ कैंपबेल के आधार पर यह विवरण देते हैं—

''श्रीमती कामा का ख़याल था कि भारतीय क्रांतिकारी बिना किसी रुकावट के बर्लिन में अपना प्रचार कार्य कर सकते हैं। यह उनके लिए सर्वाधिक सुरक्षित स्थान है।''[10] उन्होंने कहा था—

''जर्मनी से मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित करने चाहिए। जर्मनी के, भारत की स्वतंत्रता के लिए काफी लाभदायक सिद्ध होने की संभावना है।''[11]

श्रीमती कामा ने जर्मनी में जो भाषण दिये उससे भी यहाँ भारतीय प्रश्न के बारे में जागृति हुई। श्रीमती कामा ने 1910 में ही कहा था कि ''बर्लिन ऐसे देश की राजधानी है जिसकी (जनता की) भावनाएँ इस समय सबसे अधिक इंगलैंड के विरुद्ध हैं।''[12]

यह पहला विवरण था जो मैडम कामा से संबंधित था।

दूसरा विवरण बरकतुल्ला से संबंधित है—

''**बरकतुल्ला** ने 1912 में अपने पत्र में—'इस्लाम के विरुद्ध ईसाई गँठजोड़' विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था : **आज एक ही व्यक्ति की मुट्ठी में विश्व की शांति या युद्ध है।** वह व्यक्ति जर्मनी का सम्राट विलियम है। रूस, इंगलैंड, फ्रांस और इटली ने ओटोमन (तुर्की) डोमिनियनों में विद्रोह व गड़बड़ियाँ करने के लिए सब कुछ किया।...वह यूरोपीय शक्तियों का सम्मेलन बुलाने का प्रयास कर रहा है। ताकि तुर्की त्रिपोली दे दे।''[13] परन्तु सम्राट विलियम ने—

''सब कुछ असफल कर दिया है। और विश्वशांति तथा ओटोमन साम्राज्य की अखण्डता को कायम रखा है। **यूरोपीय सम्मेलन या यूरोपीय युद्ध के समय मुसलमानों का यह कर्तव्य है कि वे एकजुट हो जाएँ** तथा अपनी जान और संपत्ति के साथ ख़लीफा का साथ दें **और जर्मनी का पक्ष लें**।'' क्यों? क्योंकि—

''**जर्मनी के शब्द ही विश्वसनीय हैं।**''[15] अन्य देश ''स्वाधीनता, ईमानदारी, सभ्यता और प्रगति का ढोल पीटते हैं परंतु वे कभी-कभी रक्तपात, पवित्र स्थानों को अपवित्र करने, व्यभिचार और लूटपाट की कार्रवाइयाँ करते हैं।''[16]

अर्थात् केवल जेम्स कैंपबेल कर के ही उद्धरण की प्रस्तुति और अनुवाद। ज़ाहिर है, यह उद्धरण 1917 में ही पेश किया गया था। क्योंकि कैंपबेल की पुस्तक का प्रथम संस्करण 1917 में ही तैयार हुआ था। इसी पृष्ठभूमि और मैडम कामा या वीरेंद्र चट्टोपाध्याय के ये ही विवरण अन्यत्र भी मिलती-जुलती भाषा में उपलब्ध हैं। कम-से-कम देशकाल का उपयोग इतिहास-लेखन में ज़रूर करना चाहिए और मौलिकता की आकांक्षा के मामले में तो ज़रूर। जेम्स कैंपबेल ने इसी दसवें अध्याय में राजा महेंद्र प्रताप के मामले में पहली-पहली जानकारियाँ जुटायी हैं—जोध सिंह महाजन, अजीत सिंह, चंपक रमण पिल्लई, जॉर्ज फ्रीमैन, सर वाल्टर स्ट्रिकलैंड के बारे में बताते हुए राजा महेंद्र प्रताप पर लिखते हैं—लेकिन वे ''राजा'' संज्ञा का प्रयोग नहीं करते हैं। ''कुँवर'' संज्ञा का प्रयोग करते हैं :

"All those who have been named above were already in Germany or in America when the war began; from India itself only two of any importance went to join the enemy, Kunwar Mahendra Pratap Sing, and Harish Chandra" कुँवर महेंद्र प्रताप सिंह के बारे में उनका विचार है—"The former is a man of good family, brother of Raja Dat Prasad Singh Bahadur of Murson in the United Provinces, and brother-in-law of Raja Ranbir Singh of JHIND in the Punjab, and was already known *as an extremist* in polities and a rather eccentric character."[18]

अच्छे खानदान के बताया गया है, यहाँ। भाई दत्त प्रसाद सिंह के नाम से पहले RAJA शब्द का प्रयोग है। और पत्नी के भाई

रनबीर सिंह के लिए भी 'झींद के राजा' का प्रयोग किया गया है। मुरसान, उ.प्र. और झींद, पंजाब का संबंध इस प्रकार जुड़ा है। राजपरिवारों में परिणय-संबंध स्थापित होने से। राजनीति में वे सक्रिय थे। कैंपबेल ने उस सक्रियता को 'एक्ट्रीमिस्ट' की सोच से भी जोड़ा है। ख़ैरियत यही है कि उन्हें आतंकवादी नहीं कहा है।

श्री जेम्स ने यह भी नोट किया है—

"At the end of 1914 he was granted a passport to travel in Italy, Switzerland and Franc, *and possibly also in Japan...*"[19] अभी जापान के बारे में तथ्य उपलब्ध नहीं थे। "and America."

क्यों गये राजा महेंद्र प्रताप इन देशों में? ताकि प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान इन देशों की 'अवस्था' का अध्ययन कर सकें—"for the purpose of studying the troubled state of countries in time of WAR."[20] साथ ही स्वास्थ्य सुधार के लिए भी, also for the benefit of his health."[21] हरिश्चंद्र को वे अपने साथ ले गये थे। उनका आग्रह था कि उसे उनके सचिव के रूप में इन देशों में प्रवेश मिले—जिसकी इजाज़त नहीं दी गयी—

"He asked to have the name of *Harish Chandra* entered as his secretary, but this was refused." क्योंकि—

"The latter is the son of Munshi Ram, founder of a Natonal School called the *Gurukul* of Kangri near Hardwar, the object of which is to educate the youth of India on purly Hindu as opposed to European lines."[23]

मुंशीराम और आर्यसमाज के बारे में श्री 'कर' की समझ है—

"Munshi Ram was a prominent member of the Arya Samaj, *a religion* which is strongly anti-christian in its theology and therefore tends to be anti-Government is its politics, and for some time the Gurukul was looked upon with suspicion as a centre of sedition."[24]

'महेंद्र प्रताप श्री 'कर' की सूचना के मुताबिक 12 दिसंबर, 1914 को बंबई से यूरोप को रवाना हो जाते हैं। और हरिश्चंद्र, उनके एक सप्ताह बाद। मार्सिलेज़ से महेंद्र प्रताप सीधे जेनेवा पहुँचते हैं और देखते हैं कि हरदयाल वहाँ मौजूद हैं। वही हरदयाल जिन्होंने उन्हें जर्मन राजदूत से मिलवाया था जिनके सामने उन्होंने अपने राजा होने की शान बघारी थी—

"Mahendra Pratap left Bombay for Europe on 12th December, 1914, and Harish Chandra a week later. From Marseilles Mahendra Pratap went straight to Geneva and saw Har Dayal who introduced him to the German Consul; he pretended to be a powerful ruling chief, and refused to go to Berlin unless he was promised an interview with the Kaiser. Hardayal was sent to Berlin to see about his reception, and a week later he wired to say that the interview had been arranged."[25]

चाहे राजा की जगह 'कुँवर' संबोधन हो यह काम तो राजा की हैसियत का ही हुआ। यूरोप के सबसे शक्तिशाली सम्राट कै सर से कम से मुलाकात मंज़ूर नहीं। और हरदयाल का सम्मान कितना रहा होगा कि उनकी कोशिशों से ही कै सर, राजा महेंद्र प्रताप से बातचीत को राज़ी हुआ। क्या यह इतिहास की सामान्य घटना है? इसी के बाद राजा महेंद्र प्रताप का 'काबुल मिशन' संभव हुआ।

"Mahendra Pratap then proceded to Berlin and not long after he was sent off on a mission to Kabul."[26]

यहीं श्री 'कर' यह महत्वपूर्ण सूचना देते हैं—

"Before barring he despatched to certain influential triends in the United Provinces messages urging them to join Germany, but the messages were never delivered."[27]

देखा जा सकता है प्रथम विश्वयुद्ध की समय सीमा के भीतर ही 1917 में यह पुस्तक तैयार होती है और यूरोप पहुँचने तक की, यूरोप में विभिन्न देशों में सक्रिय होने की 1914-15 तक की राजा महेंद्र प्रताप की प्रत्येक गतिविधि यहाँ दर्ज़ है। जबकि ब्रिटिश तंत्र इतना सक्रिय था—ग़दर आंदोलन कर्त्ता उससे बेख़बर थे।

राजा महेंद्र प्रताप का जन्म 1886 में हुआ था। जेम्स कैंपबेल उनकी गतिविधियाँ नोट करते हैं 1914 से। यूरोप प्रवास से। यानी जब वह क्रांतिकारी परिदृश्य में दिखायी देते हैं तब वह 28 वर्ष के हैं। श्री कर के ग्रंथ के बाद सबसे प्रामाणिक सूचनाएँ क्रांतिकारियों के द्वारा पत्रों, प्रस्तावों, तारों, टिप्पणियों और आलोचनाओं में दिखायी देती हैं। प्रचारात्मक फोल्डरों, संपादकीयों, गीतों और लेखों में भी। स्वयं राजा महेंद्र प्रताप को ज़रूरी लगा था कि मैं अपनी जीवन-कथा लिख दूँ ताकि गुमनाम मृत्यु मुझे अपने आग़ोश में न ले ले। उन्होंने—'माई लाइफ़ स्टोरी' लिखने का विचार किया। लेकिन एकदम इसे किसी पुस्तक के रूप में न लिखकर अपने सर्कुदर 'WORLD FEDERATION' में लिखा